

प्रेम लाला नाहटा और अन्य

बनाम

चंडी प्रसाद सिकरिया

2 फ़रवरी 2007

[एस. बी. सिन्हा और पी. के. बालासुब्रमण्यन, जे. जे.]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- धारा 99; आदेश I, II और VII नियम 11
(डी)

वाद का कुसंयोजन व वादकारण-प्रकृति और इसका प्रभाव-
अभिनिर्धारित किया-यह दावे पर विचार करने से रोकते नहीं हैं क्योंकि (i)
यह केवल प्रक्रियात्मक था (ii) प्रतिवादी को यह तर्क देने का अनन्य
अधिकार नहीं है कि ऐसा दावा नहीं चलना चाहिए (iii) न्यायालय को ऐसे
मामले में वादपत्र को दो दावों से संबंधित मानने की स्वतंत्रता है (iv)
न्यायालय कानून या तथ्य के समान प्रश्नों के आधार पर विभिन्न दावों को
समेकित करने के लिए सशक्त था।

मां और बेटी द्वारा प्रतिवादी को अलग-अलग उधार दी गई दो राशियों
की वसूली के लिए एक साथ दावा दायर किया गया था-किसी अन्य व्यक्ति
के माध्यम से प्रतिवादी के साथ उनके संव्यवहार के आधार पर दावा किया

गया था-हालांकि, उस दावे से पहले, प्रतिवादी ने रकम की वसूली के लिए उनके खिलाफ दो मुकदमे दायर किए थे, जिसमें उसने दलीले दी कि हालांकि उसे राशि का भुगतान किया गया था, परंतु यह व्यापारिक संव्यवहार के रूप में थी, ऋण के रूप में नहीं- न्यायालय के आदेश पर यह दोनों दावे वापस ले लिए गए, कि इन्हें वादीगण के पश्चातवर्ती दावों के साथ विचारित किया जाएगा क्योंकि उनमें तथ्य और कानून के समान प्रश्न उठे थे-इस स्तर पर पक्षकारों व वादकारण के कुसंयोजन के आधार पर वादपत्र नामंजूर करने का प्रार्थना पत्र अंतर्गत आदेश VII नियम 11 (डी) पेश किया-पोषणीयता-अभिनिर्धारित किया गया-वादी ने अपने-अपने दावे मात्र संयुक्त किये थे, जो प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत दावे के संदर्भ में काउंटर क्लेम या क्रॉस दावे की प्रकृति का था, सभी दावों में निर्णय के लिए अंतिम प्रश्न प्रत्येक वादी के साथ प्रतिवादी द्वारा किए गए संव्यवहार की प्रकृति है-तीन दावों को संयुक्त रूप से विचारित करने का निर्देश दिया गया क्योंकि उनमें साक्ष्य समान होगी-यह आवश्यक नहीं था कि वादीगण उनमें से किसी एक के साथ वादी के रूप में आरैर एक क्लेम के रूप में आगे बढ़ने का चुनाव करे-प्रतिवादी द्वारा उनके विरुद्ध दायर दो वादो को संयुक्त विचारण के लिए विद्रो किया गया और विचारण की सुविधा वादकारण को अलग करना नहीं बताती।

कानून का निर्वचन-कानून को समेकित करना-अभिनिर्धारित किया गया-इसका अर्थ विधि की पिछली स्थिति से प्राप्त विचारों से अप्रभावित रहते हुए इसकी भाषा की जांच करके व इसका प्राकृतिक अर्थ देकर किया जाना चाहिए-समेकन का उद्देश्य विशेष विषय पर प्रभाव डालने वाले कानून को इकट्ठा करना और उसे अद्यतन करना है।

शब्द और वाक्यांश-किसी वाद का "किसी भी कानून द्वारा वर्जित होना"-सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश VII नियम 11 (डी) के संदर्भ में।

अपीलार्थीगण मां और बेटी ने मिलकर प्रतिवादी के खिलाफ कथित तौर पर उनके द्वारा अलग-अलग उधार दी गई दो राशियों की वसूली के लिए उच्च न्यायालय में मुकदमा दायर किया। उनके क्लेम कथित तौर पर एक एमकेएन के माध्यम से उनके साथ किए गए संव्यवहार पर आधारित थे। हालांकि, उस दावे से पहले, उसने उनसे कथित तौर पर देय राशि की वसूली के लिए दो दावे दायर किए थे और दलील दी थी कि हालांकि उनके द्वारा उसे धनराशि का भुगतान किया गया था परंतु, यह एक व्यापारिक संव्यवहार का हिस्सा था न कि ऋण का। हालांकि अदालत के इस आदेश पर पे दोनों दावे वापस ले लिए गए, कि इन्हें अपीलार्थी के पश्चातवर्ती दावे के साथ चलाया जाएगा क्योंकि उनमें तथ्य और कानून के समान प्रश्न उठे थे और तीनों मुकदमों का एक साथ निस्तारण करना न्याय के हित में होगा।

इस स्तर पर प्रत्यर्थी ने वादपत्र के कुसंयोजन के साथ-साथ वादकारण का कुसंयोजन के आधार पर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश VII नियम 11 (डी) के तहत अपीलकर्ता की याचिका को अस्वीकार करने के लिए एक प्रार्थना पत्र पेश किया। अपीलार्थीगण ने आवेदन का विरोध किया। विचारण न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि वादपत्र नामंजूर नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा कोई कानून नहीं है जो पक्षकारों के कुसंयोजन या वादकारण के कुसंयोजन के आधार पर वाद वर्जित करे। प्रत्यर्थी ने उस आदेश को चुनौती देते हुए अपील पेश की, जिसमें उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने यह आदेश दिया कि वादकारण के कुसंयोजन के आधार पर बुरा है। हालांकि, वाद को खारिज करने के बजाय, अपीलकर्ताओं को अपने मुकदमे को किसी एक के दावे और वादी द्वारा भरोसा किये गये संव्यवहार तक सीमित रखने की हद तक आगे बढ़ाने का विकल्प चुनने का अवसर दिया गया था।

न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया:-

1.1. ऐसे मामले में जहां एक दावा एक और आदेश । नियम 1 व आदेश । नियम 3 और दूसरी और आदेश ॥ नियम 3 के संदर्भ में पक्षकारों के कुसंयोजन और वादकारण के कुसंयोजन के दोष से ग्रसित हो तो संहिता अपने आप में यह इंगित करती है कि ऐसा दोष किसी वाद को विधि द्वारा वर्जित नहीं करता है और न ही खारिज किये जाने योग्य है। यह

संहिता के आदेश । नियम 3 क, 4 व 5 से स्पष्ट है तथा इस पर आदेश । नियम 9 द्वारा भी जोर दिया गया है, जो यह बताता है कि कोई भी दावा पक्षकारों के कुसंयोजन और कुसंयोजन के आधार पर पराजित नहीं होगा और न्यायालय किसी भी मामले में उसके समक्ष उपस्थित पक्षकारों के अधिकार व हितों को ध्यान में रखते हुए विवादग्रस्त मामले को निपटा सकती है। आदेश । नियम 10 द्वारा आगे जोर देते हुए कि उपयुक्त परिस्थितियों में किसी दावे में वादी के रूप में किसी व्यक्ति को प्रतिस्थापित करने या जोड़ने के लिए न्यायालय को सक्षम बनाया गया है। आदेश ॥ वादों की विरचना से संबंधित है, जिसका नियम 3 यह बताता है कि उसके सिवाय जैसा अन्यथा उपबंधित है, वादी उसी प्रतिवादी या संयुक्ततः उन्हीं प्रतिवादियों के विरुद्ध कई वादहेतुक एक ही वाद में संयोजित कर सकेगा और ऐसे वादहेतुक रखने वाले कोई भी वादी, जिनमें वे उसी प्रतिवादी या संयुक्ततः उन्हीं प्रतिवादियों के विरुद्ध संयुक्ततः हितबद्ध हो, ऐसे वादहेतुकों को एक ही वाद में संयोजित कर सकेंगे। नियम 6 न्यायालय में दायर वाद में वादकारण के कुसंयोजन के आधार पर पृथक विचारण का आदेश देने की शक्ति प्रदान करता है। [पैरा 11][270-बी-डी]

महंत रामधन पुरी बनाम चौधरी लछमी नारायण एआईआर (1937)
प्रीवी काउंसिल 42

थॉमस बनाम मुर्रे (1918) 1 के. बी. 555 पर विश्वास करते हुए

1.2 नियमों और प्रक्रियाओं की विरचना न्याय के लिए होती है, न कि न्याय की पराजय के लिए। आदेश । और आदेश ॥ की स्कीम स्पष्ट रूप से बताती है कि उसमें दिए गए नियम प्रक्रिया के दायरे में हैं, न कि मूल कानून या अधिकारों के दायरे में। यह संहिता पक्षकारों के संयोजन के वादों की विरचना संबंधी आपत्तियों को केवल प्रक्रियात्मक मानती है, जो आगे संहिता की धारा 99 से और भी स्पष्ट है जो विशेष रूप से इंगित करती है कि पक्षकारों के कुसंयोजन या कुसंयोजन या वादकारणों के कुसंयोजन के कारण अपील में कोई भी डिक्री उलट नहीं की जाएगी, जब तक न्यायालय यह नहीं पाता कि कुसंयोजन एक आवश्यक पक्षकार था। [पैरा 13] [271-सी-डी]

1.3. यह स्पष्ट है कि पक्षकारों का कुसंयोजन या वादकारण का कुसंयोजन के आधार पर आपत्ति एक प्रक्रियात्मक आपत्ति है और यह किसी वाद संस्थित करने, विचारण करने या उस वाद के अंतिम निस्तारण पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाती है। न्यायालय को ऐसे वादपत्र को दो वादों से संबंधित मानने और उस आधार पर उनका विचारण करने, उनका निपटारा करने की भी स्वतंत्रता है। [पैरा 13] [271-एफ-जी]

2. जब मामला न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है, तो यह नहीं माना जा सकता है कि इस तरह के दोष से ग्रसित दावा कुछ ऐसा है जो विधि द्वारा वर्जित है। आखिरकार, विचारण की सुविधा ही प्रासंगिक है और

प्रतिवादी को यह तर्क देने का,कि इस तरह के वाद को आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए, पूर्ण अधिकार नहीं है। पैरा 17] [273-जी)

हेल्सबरी का इंग्लैंड का कानून, खंड 37, पैराग्राफ 73 का उल्लेख किया गया है।

3. जब कोई संहिता के आदेश VII नियम 11 विशेष रूप से खंड (डी) पर विचार करता है, तो यह कहना मुश्किल है कि एक वाद जो पक्षकारों कुसंयोजन या वादकारण के कुसंयोजन के लिए बुरा है, वह किसी भी विधि द्वारा वर्जित दावा है। [पैरा 15] [272-जी]

4. यदि न्यायालय में विभिन्न दावों को इस आधार पर समेकित करने की शक्ति होती कि उन्हें समेकित करने के लिए आदेश देना वांछनीय होना चाहिए या इस आधार पर कि उसके निस्तारण के लिए कानून या तथ्य के कुछ समान प्रश्न उत्पन्न होते हैं, तो यह निश्चित रूप से यह नहीं माना जा सकता कि पक्षकारों के कुसंयोजन या वादकारण के कुसंयोजन से ग्रसित वाद का विचारण कुछ ऐसा है जो कानून द्वारा वर्जित है। न्यायालय में निहित समेकन की शक्ति स्पष्ट रूप से इस स्थिति को जन्म देती है कि केवल पक्षकारों या वादकारणों के कुसंयोजन की स्थिति ऐसा नहीं है, परिवाद के संस्थान की दहलीज पर ही बाधा उत्पन्न करती है।[पैरा 16] [273- सी-डी]

मार्गो ट्रेडिंग और छह अन्य बनाम ओम क्रेडिट प्राइवेट लिमिटेड,
(अनरिपोर्टेड निर्णय) ओवर रूल्ड

हरेन्द्र नाथ बनाम पूर्ण चन्द्र ए.आई. आर. (1928) कलकत्ता 199.
असेंबली ऑफ गॉड चर्च बनाम इवान कापर और अन्य (2004) 4 कलकत्ता
उच्च न्यायालय नोट्स 360 स्वीकृत |

मेयर (एच.के.) लिमिटेड और अन्य बनाम आर्नेस एण्ड पार्टिज,
वेसल एम. वी. फॉर्च्यून एक्सप्रेस व अन्य. (2006) 3 एस. सी. सी. 100।

पायने बनाम ब्रिटिश टाइम, रिकॉर्डर कंपनी लिमिटेड (1921) 2
के.बी. 1 का उल्लेख किया गया है।

हेल्सबरी का इंग्लैंड का कानून, खंड 37, पैराग्राफ 69 का उल्लेख
किया गया है।

5.1. प्रतिवादी द्वारा संबंधित अपीलार्थीगण के विरुद्ध संव्यवहार के
आधार पर दायर वाद वर्तमान वाद, 2003 के सी. एस. नंबर 29 के साथ
संयुक्त विचारण के लिए पहले से ही वापस ले लिये गये हैं। उन दोनों दावों
में संबंधित अपीलकर्ताओं के प्रत्यर्थी के साथ हुए संव्यवहार की प्रकृति को
विचारण के बाद निर्णीत करना है। वर्तमान दावे में अपीलार्थीगण उस
भुगतान का दावा कर रहे हैं जो उनके दो मुकदमों में संबंधित

अपीलकर्ताओं के खिलाफ प्रतिवादी के दावे का आधार भी बनता है। [पैरा 19] [275- सी-डी]

5.2. वर्तमान दावे,, 2003 के सी. एस. संख्या 29 में, अपीलकर्ताओं ने अपने संबंधित क्लेम को संयुक्त किया, जो प्रत्यर्थी द्वारा दायर किये गये दावे के प्रतिदावे या क्रॉस सूट की प्रकृति का है। सभी वादों के निर्णय के लिए एकमात्र प्रश्न प्रत्येक अपीलकर्ता के साथ प्रतिवादी द्वारा किए गए संव्यवहार की प्रकृति का है और दोनों दावों में जो साक्ष्य पेश की जानी है, वह प्रतिवादी की प्रत्येक अपीलार्थी के साथ किये गये संबंधित संव्यवहार की प्रकृति की है। यदि अपीलकर्ताओं द्वारा वर्तमान वाद में रखा गया वादकारण एक साथ विचारित किया जाता है, काफी हद तक साक्ष्य समान होगी। विशेष रूप से प्रतिवादी द्वारा दायर दो मुकदमों के संबंध में जो संयुक्त विचारण के लिए विद्धो किया गया , तो इसमें कोई शर्मिंदगी नहीं होगी। हस्तगत दावे पर एक साथ मुकदमा चलाया जाता है, खासकर प्रतिवादी द्वारा उनके खिलाफ दायर किए गए दो मुकदमों के संदर्भ में और संयुक्त मुकदमे के लिए वापस ले लिया जाता है। इसलिए, मौजूदा मामले में, भले ही यह मान लिया जाए कि अपीलकर्ताओं द्वारा दायर वाद में वादकारणों के कुसंयोजन का दोष था, यह ऐसा मामला नहीं है जहां विचारण की सुविधा वादकारण को पृथक करके उनका पृथक से विचारण करने के लिए चेतावनी दे। तीनों मुकदमों की सुनवाई संयुक्त रूप से की

जानी है और चूंकि किसी भी घटना में साक्ष्य सामान्य होंगे, इसलिए डिवीजन बेंच ने अपीलकर्ताओं को एक वादी और एक दावे के साथ आगे बढ़ने का निर्देश देने में गलती की। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर अपीलकर्ताओं को एक नया वाद दायर करने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए ताकि वह अपना दावा पेश कर सकें। यहां तक कि अगर ऐसा कोई वाद दायर किया भी जाता है, तो वर्तमान मुकदमे और प्रतिवादी द्वारा दायर दो मुकदमों के साथ उसकी संयुक्त सुनवाई का रास्ता साफ हो जाएगा। [पैरा 19] [275 ई-एच 276-ए]

5.3 इन परिस्थितियों में साक्ष्यों के आधार पर तीन मुकदमों की संयुक्त सुनवाई ही उचित कदम होगा।[पैरा 20] [276-सी]

6. सिविल प्रक्रिया संहिता, जैसा कि इसकी प्रस्तावना बताती है, सिविल न्यायालयों की प्रक्रिया से संबंधित विधियों का समेकन और संशोधन करने के लिए एक अधिनियम है। निसंदेह यह कुछ मौलिक अधिकारों से संबंधित भी है। परंतु जैसा कि इसकी प्रस्तावना बताती है कि इसका उद्देश्य अनिवार्य रूप से सिविल प्रक्रिया से संबंधित कानून को समेकित करना है। समेकन का उद्देश्य किसी विशेष विषय से संबंधित कानून को एकत्र करना और उसे अद्यतन बनाना है। एक समेकित अधिनियम की व्याख्या ऐसे कानून की भाषा की जांच करके और कानून

की पिछली स्थिति से प्राप्त विचारों से अप्रभावित हुए, इसका प्राकृतिक अर्थ देकर की जानी चाहिए। [पैरा 8] [69-ए-सी)

सिविल अपील की क्षेत्राधिकार: 2007 की सिविल अपील संख्या 446

कलकत्ता उच्च न्यायालय के जीए 3029/2004, ए.पी.ओ.टी. क्रमांक 447/2004, जी.ए. क्रमांक 4458/2004 एवं सी.एस. क्रमांक 29/2003 में पारित अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 19.5.2005 से

भास्कर पी गुप्ता, जयदीप गुप्ता, ओ पी झुनझुनवाला, श्रुति चौधरी व संजीव कुमार(खेतान एंड कंपनी के लिए) वास्ते अपीलार्थीगण

राणा मुखर्जी, सिद्धार्थ गौतम और गुडविल इंडीवर के लिए, प्रतिवादी के लिए

न्यायालय का निर्णय पी.के. बालासुब्रमण्यम, जे. द्वारा सुनाया गया।

अनुमति दी गई।

1. अपीलकर्ता कलकत्ता उच्च न्यायालय के सीएस नं 29/2003 में मूल रूप से वादीगण हैं। वे मां और बेटी हैं। उन्होंने एक साथ प्रत्यर्थी, प्रतिवादी के विरुद्ध उनसे कथित तौर पर बकाया राशि की वसूली के लिए मुकदमा किया। अपीलकर्ता सं 1 ने 10,93,863/- रुपये ब्याज सहित आरैर अपीलकर्ता सं 2 ने ब्याज सहित 10,90,849/- रुपये की वसूली की

मांग की। उनके दावे कथित तौर पर अपीलकर्ता नंबर 1 के पति और अपीलकर्ता नंबर 2 के पिता महेंद्र कुमार नाहटा के माध्यम से प्रतिवादी के साथ किए गए लेनदेन पर आधारित थे। संक्षेप में, अपीलकर्ता सं 1 का दावा यह था कि उसने प्रतिवादी को 5 लाख रुपये उधार दिए थे और जिसका भुगतान नहीं गया था और जिसका ब्याज और हर्जाने के साथ भुगतान किया जाना था। अपीलकर्ता संख्या 2 का भी यही मामला था कि उसने 5 लाख रुपये की राशि प्रतिवादी को उधार दी थी एवं जो ब्याज व हर्जाने सहित बकाया थी। उनका यह मामला था कि यह संव्यवहार महेंद्र कुमार नाहटा के माध्यम से किया गया था और नाहटा के माध्यम से, उनका प्रत्यर्थी के साथ पहले से लेन-देन रहा है। वाद के पैराग्राफ 4 में इस प्रकार कहा गया था:

"उक्त नाहटा अपने कारोबार के सामान्य अनुक्रम में प्रतिवादी को कई वर्षों से जानता था और अप्रैल, 2000 में किसी समय वादीगण की ओर से कार्य करते समय, उक्त नाहटा ने प्रतिवादी के अनुरोध पर 5 लाख रुपये के दो ऋणों की सम्यक व्यवस्था की थी, जो प्रत्येक वादी द्वारा प्रतिवादी को उधार दिया जाना था और यह दावा प्रतिवादी द्वारा निर्धारित तिथि के भीतर उक्त ऋण को चुकाने में विफलता से उत्पन्न होने वाले ब्याज और विशेष क्षति के साथ उक्त ऋण की

वसूली के लिए लाया गया है, जिसे इसके बाद और अधिक पूर्णता से कहा गया है।"

प्रतिवादी के राशि का भुगतान नहीं करने और उनके दावे को उनके विरुद्ध वाद दायर कर अस्वीकार करने पर यह वाद राशि की वसूली के लिए दायर किया गया।

2. प्रतिवादी ने पूर्व में अपीलकर्ताओं से कथित रूप से देय राशि की वसूली के लिए दो मुकदमे दायर किए थे। प्रतिवादी द्वारा मनी सूट नंबर 585/2001 अपीलकर्ता नंबर 2 के खिलाफ दायर किया गया था, जिसमें अपीलकर्ता सं 2 से लिये गये 5 लाख रुपये की राशि को समायोजित करने के बाद निश्चित राशि की वसूली के लिए दावा किया गया था। उसने स्वीकार कर लिया था कि अपीलकर्ता द्वारा 5 लाख रुपये का भुगतान किया गया था, लेकिन यह दलील दी गई कि यह ऋण नहीं था, बल्कि यह उस वादपत्र में निर्धारित व्यापारिक संव्यवहार का हिस्सा था। प्रतिवादी ने अपीलकर्ता सं 1 के विरुद्ध भी एक मनी सूट सं 69/2002 उसी आधार पर उसके द्वारा भुगतान की गई कथित 5 लाख रुपये की राशि को समायोजित करने के पश्चात निश्चित राशि की वसूली के लिए दायर किया। दावे कलकत्ता में सिटी सिविल कोर्ट में दायर किए गए थे। जब अपीलकर्ताओं ने मिलकर 2003 का अपना

मुकदमा सी.एस. संख्या 29 दायर किया, तब उक्त दावे लंबित थे। उनका दावा इस आधार पर था कि उनमें प्रत्येक के द्वारा 5,00,000/- रुपये का प्रतिवादी को ऋण के रूप में भुगतान किया था।

3. अपीलकर्ताओं ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में एएलपी सं 10/2003 लैटर पेटेंट के खंड 13 सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में "संहिता") की धारा 24 का अवलंबन लेते हुए मनी सूट सं 585/2001 और मनी सूट सं 69/2009 को विद्धो कर उन्हें सीएस नं 29/2003 के साथ विचारित करने की प्रार्थना करते हुए यह दलील दी कि दावों में तथ्य और विधि का समान प्रश्न उत्पन्न हुआ है और उक्त तीनों दावों का विचारण और निस्तारण एक साथ करना न्यायहित में होगा। यद्यपि प्रतिवादी ने आवेदन का विरोध किया, न्यायालय ने यह विचार लिया कि न्याय के हित में यह उचित होगा कि कलकत्ता में सिटी सिविल कोर्ट में लंबित दो मुकदमों को सुनवाई और निस्तारण के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थीगण द्वारा दायर सीएस नंबर 29/2003 के साथ विचारित आँर निस्तारित किया जाए। विद्धोल आँर संयुक्त विचारण के लिये उक्त आदेश अंतिम हो गया।

4. मामला इस प्रकार था, यहां के प्रत्यर्थी ने जो सीएस सं 29/2003 में प्रतिवादी है, ने एक प्रार्थना पत्र जीए नं 4458/2003 अंतर्गत आदेश VII नियम 11 संहिता में पेश कर सीएस नं 29/2003 के वादपत्र को इस आधार पर नामंजूर करने का निवेदन किया कि प्रत्येक अपीलार्थी, जो उस मुकदमे में वादीगण थे, का वादकारण किसी समान स्रोत से उत्पन्न नहीं हुआ और दावे में संबंधित वादी द्वारा बताये गये वादकारणों के बीच कोई अन्योन्याश्रय या संबंध नहीं था और उनके द्वारा चाहे गए अनुतोष के अधिकार के लिए कोई समान आधार नहीं था। यह दलील दी गई थी कि अपीलार्थीगण वादी संहिता के आदेश I नियम 1 के संदर्भ में एक मुकदमे में वादी के रूप में शामिल नहीं हो सकते थे और आदेश II नियम 3 के संदर्भ में एक ही मुकदमें में स्वतंत्र वाद कारणों को एकजुट नहीं कर सकते थे। यह निवेदन किया गया था कि वहां न केवल पक्षकारों का कुसंयोजन था अपितु वादकारण का भी कुसंयोजन था। इसी आधार पर संहिता के आदेश VII नियम 11 (डी) के तहत वादपत्र को खारिज करने की प्रार्थना की गई थी। अपीलकर्ताओं, वादीगण, ने आवेदन का विरोध किया। उन्होंने तर्क दिया कि वादीगण का दावा वादी नंबर 1 के पति और वादी नंबर 2 के पिता नाहटा के प्रतिवादी के साथ हुए लेन-देन से उत्पन्न हुआ है और मुकदमे में वादकारण के कुसंयोजन का कोई दोष नहीं था। उन्होंने निवेदन किया कि संहिता के आदेश VII नियम 11 (डी) के तहत वादपत्र खारिज किए जाने योग्य नहीं है।

5. मूल रूप से विचारण न्यायाधीश ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या अपीलकर्ताओं द्वारा दायर की गई याचिका आदेश VII नियम 11(डी) के तहत इस आधार पर कि वादपत्र में दिए गए अभिवचनों से यह प्रतीत होता है कि मुकदमा किसी भी विधि द्वारा वर्जित है, खारिज की जा सकती है। विद्वान न्यायाधीश ने यह दृष्टिकोण लिया कि ऐसा कोई कानून नहीं है, जो वादपत्र को पक्षकारों के कुसंयोजन या वादकारण के कुसंयोजन के आधार पर वर्जित करता हो, हालांकि, निश्चित रूप से, सुविधा के प्रयोजनों के लिए, एक न्यायालय को वादकारण के कुसंयोजन या पक्षकारों के कुसंयोजन को नजरअंदाज करना चाहिए, लेकिन इस तरह के दोष के आधार पर, संहिता के आदेश VII नियम 11 (डी) को लागू करके वाद को खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह नहीं माना जा सकता है कि एक दावा जो पक्षकारों के कुसंयोजन या वादकारणों के कुसंयोजन या दोनों दोषों से ग्रसित है, किसी भी कानून द्वारा वर्जित है। इस प्रकार, प्रत्यर्थी, जो सीएस नं 29/2003 का प्रतिवादी है द्वारा दायर आवेदन खारिज कर दिया गया था।

6. प्रतिवादी ने लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के तहत उस आदेश को चुनौती देते हुए अपील दायर करने का इरादा किया। डिवीजन बेंच ने अभिनिर्धारित किया कि वाद वादकारण के कुसंयोजन के लिए बुरा था और इस प्रकार विचारण न्यायालय द्वारा संहिता के आदेश VII नियम 11 (डी)

को लागू न करना और वाद को खारिज न करना उचित नहीं था। डिवीजन बेंच ने वाद को खारिज नहीं किया, लेकिन, अपीलकर्ताओं को अपने मुकदमे को किसी एक के दावे आँर वादी द्वारा भरोसा किये गये संव्यवहार तक सीमित रखने की हद तक आगे बढ़ाने का विकल्प चुनने का अवसर दिया गया था। वादी. डिविजन बेंच के इस फैसले से क्षुब्ध होकर वादी पक्ष ने यह अपील दायर की है।

7. यद्यपि लैटर्स पेटेंट के खंड 15 के तहत डिवीजन बेंच (जिसमें हम में से एक, बालासुब्रमण्यन, जे. को युक्तियुक्त बल मिलता है), के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा दायर अपील की स्थिरता पर तर्क दिए गए थे, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से लिवरपूल और लंदन एस.पी. एंड आई एसोसिएशन लिमिटेड बनाम एम.ई. सी सक्सेस अाई और अन्य [2004] 9 एससीसी 512, जिसमे हममें से एक (सिन्हा जे.) पक्षकार थे, में पारित निर्णय हमारे समक्ष पेश किया, जिसमें यह मत लिया गया कि लैटर्स पेटेंट के खंड 15 में एक अपील एेसे मामले में भी हो सकती है, जहां विचारण न्यायालय संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत एक वाद को खारिज करने की प्रतिवादी की प्रार्थना को स्वीकार करने से इनकार कर देता है। बेशक, यह एक ऐसा मामला था जहां संहिता के आदेश VII नियम 11 (ए) के तहत नामंजूरी की मांग इस आधार पर की गई थी कि वाद में वादकारण का खुलासा नहीं किया गया। इस वाद के प्रयोजन के लिए, हम

उसमें दी गई स्थिति को स्वीकार करते हैं। हम इस पर विचार करना भी आवश्यक नहीं समझते हैं कि क्या संहिता के आदेश VII के नियम 11 के खंड (ए) और संहिता के आदेश VII के नियम 11 के खंड (डी) के तहत मांगी गई नामंजूरी की प्रार्थनाओं के बीच कोई अंतर है और हम लेटर्स पेटेंट अपील के खंड 15 के तहत प्रतिवादी द्वारा दायर की गई अपील कायम रहने के आधार पर आगे बढ़ते हैं।

8. लेकिन यह एक अलग प्रश्न है कि क्या कोई दावा, जो पक्षकारों के कुसंयोजन या वादकारण के कुसंयोजन के लिए बुरा हो सकता है, संहिता के आदेश VII नियम 11 (डी) के संदर्भ में विधि द्वारा वर्जित वाद है। सिविल प्रक्रिया संहिता, जैसा कि इसकी प्रस्तावना बताती है कि इसका उद्देश्य अनिवार्य रूप से सिविल प्रक्रिया से संबंधित कानून को समेकित करना है। समेकन का उद्देश्य किसी विशेष विषय से संबंधित कानून को एकत्र करना और उसे अद्यतन बनाना है। एक समेकित अधिनियम की व्याख्या ऐसे कानून की भाषा की जांच करके और कानून की पिछली स्थिति से प्राप्त विचारों से अप्रभावित हुए, इसका प्राकृतिक अर्थ देकर की जानी चाहिए।

9. इस समझ के आधार पर, हम आदेश I और आदेश II की संबंधित स्थिति पर विचार कर सकते हैं। आदेश I वाद के पक्षकारों से संबंधित है और यह प्रावधान करता है कि कौन वादी के रूप में शामिल हो

सकता है और कौन प्रतिवादी के रूप में शामिल हो सकता है। यह वादी को किसी विशेष वादी या किसी विशेष प्रतिवादी के संदर्भ में चुनाव करने या वादी या प्रतिवादी के रूप में गलत तरीके से जुड़े पक्षकारों के संबंध में अलग-अलग विचारणों का आदेश देने के लिए न्यायालय की शक्ति से भी संबंधित है। यह न्यायालय को उन पक्षकारों में से किसी एक के पक्ष या विपक्ष में फैसला सुनाने की शक्ति भी देता है जो एक साथ संयोजित हो गए हैं या जिन पर एक साथ दावा चल रहा है। यह आदेश यह भी निर्दिष्ट करता है कि कोई दावा पक्षकारों के असंयोजन या कुसंयोजन के आधार पर पराजित नहीं होगा, जब तक कि असंयोजन के मामले में वह असंयोजन एक आवश्यक पक्षकार न हो। संहिता न्यायालय को यह शक्ति भी प्रदान करती है कि वह उचित व्यक्ति को वादी के रूप में प्रतिस्थापित करे या पक्षकार को जोड़े या पक्षकार को वादीगण या प्रतिवादीगण के रूप से किसी भी स्तर पर, जहां उसे उचित लगे, हटा दे।

10. आदेश ॥ दावे के विरचना से संबंधित है। इसमें यह प्रावधान है कि प्रत्येक वाद की विरचना यावत्साध्य एेसे की जाएगी, कि विवादग्रस्त विषयों पर अंतिम विनिश्चय करने के लिए आधार प्राप्त हो जाए और उनसे सम्पृक्त अतिरिक्त मुकदमेबाजी का भी निवारण हो जाए। यह यह भी बताता है कि प्रत्येक वाद के अंतर्गत पूरा दावा होगा, जिसे उस वादहेतुक के विषय में वादी करने का हकदार है। आगे इसमें यह भी प्रावधान है कि वादी उसी

प्रतिवादी या संयुक्ततः उन्हीं प्रतिवादियों के विरुद्ध कई वादहेतुक एक ही वाद में संयोजित कर सकेगा और ऐसे वादहेतुक रखने वाले कोई भी वादी, जिनमें वे उसी प्रतिवादी या संयुक्ततः उन्हीं प्रतिवादियों के विरुद्ध संयुक्ततः हितबद्ध हों, ऐसे वादहेतुकों को एक ही वाद में संयोजित कर सकेंगे। यह बताता है कि वादहेतुकों के कुसंयोजन के आधार पर सभी आक्षेप यथासंभव शीघ्रतम अवसर पर किये जाएंगे। यह न्यायालय को भी सशक्त बनाता है, कि जहां न्यायालय को प्रतीत होता है कि एक ही वाद में वादहेतुकों के संयोजन से विचारण में उलझन या विलंब हो जाएगा या ऐसा करना अन्यथा असुविधाजनक होगा, वह न्यायालय पृथक विचारण का आदेश दे सकेगा या ऐसा अन्य आदेश दे सकेगा, जो न्यायहित में समीचीन हो।

11. ऐसे मामले में जहां एक दावा एक और आदेश । नियम 1 व आदेश । नियम 3 और दूसरी और आदेश ॥ नियम 3 के संदर्भ में पक्षकारों के कुसंयोजन और वादकारण के कुसंयोजन के दोष से ग्रसित हो तो संहिता अपने आप में यह इंगित करती है कि ऐसा दोष किसी वाद को विधि द्वारा वर्जित नहीं करता है और न ही खारिज किये जाने योग्य है। यह संहिता के आदेश । नियम 3 क, 4 व 5 से स्पष्ट है तथा इस पर आदेश । नियम 9 द्वारा भी जोर दिया गया है, जो यह बताता है कि कोई भी दावा पक्षकारों के कुसंयोजन और कुसंयोजन के आधार पर पराजित

नहीं होगा और न्यायालय किसी भी मामले में उसके समक्ष उपस्थित पक्षकारों के अधिकार व हितों को ध्यान में रखते हुए विवादग्रस्त मामले को निपटा सकती है। आदेश । नियम 10 द्वारा आगे जोर देते हुए कि उपयुक्त परिस्थितियों में किसी मुकदमे में वादी के रूप में किसी व्यक्ति को प्रतिस्थापित करने या जोड़ने के लिए न्यायालय को सशक्त बनाया है। आदेश ॥ वादों की विरचना से संबंधित है, जिसका नियम 3 यह बताता है कि उसके सिवाय जैसा अन्यथा उपबंधित है, वादी उसी प्रतिवादी या संयुक्ततः उन्हीं प्रतिवादियों के विरुद्ध कई वादहेतुक एक ही वाद में संयोजित कर सकेगा और ऐसे वादहेतुक रखने वाले कोई भी वादी, जिनमें वे उसी प्रतिवादी या संयुक्ततः उन्हीं प्रतिवादियों के विरुद्ध संयुक्ततः हितबद्ध हो, ऐसे वादहेतुकों को एक ही वाद में संयोजित कर सकेंगे। नियम 6 न्यायालय में दायर वाद में वादकारण के कुसंयोजन के आधार पर पृथक विचारण का आदेश देने की शक्ति प्रदान करता है। 12. इंग्लैंड में आदेश XVI नियम 1 के संशोधन के बाद, थॉमस बनाम मूर (1918) 1 के.बी. 555 में अपील न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि:-

"जिस समय (1894) एसी 494 का फैसला किया गया था, उस समय कानून जो भी रहा हो, पक्षकारों का संयोजन और वादकारणों का संयोजन इस अर्थ में विवेकाधीन हैं, कि यदि वे संयोजित हो जाते हैं तो उन्हें हटाने का कोई आत्यंतिक

अधिकार नहीं है, लेकिन यदि न्यायालय सही समझता है तो ऐसा करना उसके विवेकाधीन अधिकार है।"

महंत रामधन पुरी बनाम चौधरी लक्ष्मी नारायण आई. आर. (1937) प्रिवी काउंसिल 42 के मामले में प्रिवी काउंसिल ने अभिनिर्धारित किया:-

"यह इंगित करना वांछनीय है कि वर्तमान नियमों जैसे कि वे हैं, के तहत, मात्र कुसंयोजन का तथ्य प्रतिवादी को कार्यवाही को रद्द करने या कार्रवाई को खारिज करने का अधिकार देने के लिए अपने आप में पर्याप्त नहीं है।"

निःसंदेह ही लॉर्डशिप संहिता की धारा 99 के संदर्भ में कह रहे थे। लॉर्डशिप ने अपील न्यायालय की थॉमस बनाम मूर (उपरोक्त) में पारित निर्णय की उपरोक्त उद्धृत टिप्पणी का उल्लेख किया। इसलिए यह स्पष्ट है कि एक वाद जो वादकारणों के कुसंयोजन के लिए बुरा हो सकता है, ऐसा नहीं है जिसे प्रतिवादी द्वारा अधिकार के रूप में खारिज या खारिज किया जा सकता है और यह न्यायालय का विवेक है कि वह वाद में आगे बढ़े या वादी को इस दोष को सुधारने का अवसर दे। वास्तव में, उस मामले में प्रिवी काउंसिल ने पाया कि दावा वादकारणों के कुसंयोजन के लिए बुरा था। इसने आगे यह भी पाया कि विचारण न्यायालय ने इससे पैदा हुई जटिलताओं के बावजूद, वाद की सुनवाई की और संतोषजनक ढंग से

इसका निस्तारण किया। इसलिए, न्यायालय के पास अपीलीय स्तर पर वादकारणों के कुसंयोजन के आधार पर वाद को खारिज करने का कोई अवसर नहीं था।

13. यह सर्वविदित है कि नियमों और प्रक्रियाओं की विरचना न्याय के लिए होती है, न कि न्याय की पराजय के लिए। आदेश । आर आदेश ॥ की स्कीम स्पष्ट रूप से बताती है कि उसमें दिए गए नियम प्रक्रिया के दायरे में हैं, न कि मूल कानून या अधिकारों के दायरे में। यह संहिता पक्षकारों के संयोजन के वादों की विरचना संबंधी आपत्तियों को केवल प्रक्रियात्मक मानती है, जो आगे संहिता की धारा 99 से और भी स्पष्ट है जो विशेष रूप से इंगित करती है कि पक्षकारों के कुसंयोजन या असंयोजन या वादकारणों के कुसंयोजन के कारण अपील में कोई भी डिक्री उलट नहीं की जाएगी, जब तक न्यायालय यह नहीं पाता कि असंयोजन एक आवश्यक पक्षकार था। यह संहिता की धारा 21 के उसी सिद्धांत पर आधारित है, जो यह दर्शाता है कि जिस न्यायालय में वाद दायर किया गया है, उसके स्थानीय क्षेत्राधिकार की आपत्ति भी डिक्री के खिलाफ अपील में प्रथम बार सफलतापूर्वक नहीं उठाई जा सकती, जब तक कि अपीलकर्ता यह दर्शाने में सक्षम हो कि इसका परिणाम न्याय की विफलता है। वाद मूल्यांकन अधिनियम भी इसी तरह इंगित करता है कि आर्थिक क्षेत्राधिकार के अभाव में उस न्यायालय में वाद का विचारण बिना आपत्ति के किया

जाना उसी प्रकार का है। वर्ष 1976 में संहिता की धारा 24 में संशोधन न्यायालय को बिना किसी क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में दायर वाद को उस न्यायालय में स्थानांतरित करने की भी शक्ति प्रदान करता है, जिसके पास उस वाद को सुनवाई की क्षेत्राधिकारिता है। इन प्रावधानों आर विशेष रूप से संहिता के आदेश I और आदेश II के नियमों के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि वादीगण के कुसंयोजन आर वादकारणों के कुसंयोजन की आपत्ति, एक प्रक्रियात्मक आपत्ति है और यह दावे को संस्थित करने, उसका विचारण करने आर दावे का अंतिम निस्तारण करने में कोई रोक नहीं लगाता है। न्यायालय को ऐसे मामले में वाद को दो वादों से संबंधित मानने और उस आधार पर उनका निस्तारण करने की भी स्वतंत्रता है।

14. आदेश VII नियम 11 (डी) वाद को "किसी विधि द्वारा वर्जित" होने की बात करता है। ब्लैक लॉ डिक्शनरी के अनुसार, वर्जन का अर्थ है, किसी कानूनी मुकदमे या कानूनी दावे को रोकने वाली याचिका है। इसका अर्थ क्रिया के रूप में कानूनी आपत्ति द्वारा रोकना है। रामनाथ अय्यर के कानून शब्दकोश के अनुसार, "वर्जन वह है जो प्रवेश या निकास में बाधा डालता है, विचार से बाहर करना। इसलिए यह देखना जरूरी है कि क्या एक वाद पक्षकारों और वादकारणों का कुसंयोजन के लिए दूषित है, विचारण से बाहर है या निस्तारण के लिए वर्जित है। जैसा कि पहले ही बताया गया है, संहिता की योजना में पक्षकारों के कुसंयोजन या वादकारणों

के लिए दोषपूर्ण दावा पेश करने पर ऐसा कोई निषेध या रोकथाम नहीं है। न्यायालय अभी भी वाद की सुनवाई करने और उसका निस्तारण करने में सक्षम है, हालांकि न्यायालय वादीगण को यह बताने में भी सक्षम हो सकती है कि या किसी एक वादी के साथ आगे बढ़ने का चुनाव करें या वादकारणों में से किसी एक के साथ आगे बढ़ें। सिविल प्रक्रिया संहिता की योजना पर इसलिए यह नहीं माना जा सकता है कि पक्षकारों व वादकारणों के कुसंयोजन के लिए कोई दावा किसी विधि द्वारा वर्जित है। इसकी तुलना संहिता की धारा 80 के अनुपालन में विफलता से की जा सकती है। ऐसे धारा 80 की उपधारा (1) में यह प्रावधान है कि "कोई मुकदमा संस्थित नहीं किया जाएगा।" इसलिए यह दावे के संस्थन के लिए एक बाधा है और यही कारण है कि न्यायालयों ने यह विचार किया है कि यदि ऐसे दावे में जहां संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस अनिवार्य है, वादपत्र के अभिवचनों में नोटिस दिये जाने बावत कोई कथन नहीं है तो वादपत्र नामंजूर किये जाने योग्य है। उस स्थिति में, दावे पर विचार करना संहिता की धारा 80 द्वारा वर्जित होगा। यही स्थिति तब भी होगी जब संहिता की धारा 86 से प्रभावित कोई वाद, यदि वह वाद किरायेदार से किराया प्राप्त करने के लिए नहीं है, केंद्र सरकार की सहमति प्राप्त किए बिना दायर किया जाता है। न केवल आदेश 1 या आदेश 11 में इस तरह के कोई शब्द नहीं हैं, बल्कि दूसरी ओर, आदेश 1 के नियम 9, आदेश 1 के नियम 1 और 3 और आदेश 11 के नियम 3 और 6 स्पष्ट रूप से सुझाव देते हैं कि यह है

पक्षकारों के कुसंयोजन आरैर वादकारण के कुसंयोजन के दोष होते हुए भी न्यायालय दावे को आगे बढ़ाएगा और यदि दावे का निर्णय होता है तो उसे धारा 99 के मद्देनजर, केवल उस आधार पर अपास्त नहीं किया जा सकता है, जब तक संहिता की धारा 99 की शर्तें पूरी नहीं होती। इसलिए कल्पना की कोई सीमा नहीं है कि क्या पक्षकारों के कुसंयोजन व वादकारणों के कुसंयोजन के लिए किसी दावे को संहिता के आदेश VII नियम 11 (डी) के अर्थ में किसी भी कानून द्वारा वर्जित माना जा सकता है।

15. इस प्रकार, जब कोई संहिता के आदेश Vii नियम 11 के खंड (डी) के विशेष संदर्भ के साथ विचार करता है, तो यह कहना मुश्किल है कि एक वाद, जो पक्षकारों के कुसंयोजन व वादकारणों के कुसंयोजन के लिए बुरा है, वह एक विधि द्वारा वर्जित वाद है। पक्षकारों को जाेड़ने या वादकारणों को जोड़ने या दावे की विरचना से संबंधित आपत्ति बाबत केवल प्रक्रियात्मक आपत्ति के रूप में ही सफलतापूर्वक अाग्रह किया जा सकता है, जो न्यायालय को या तो दावे जैसा वह है, को जारी रखने की अनुमति देने या वादी या वादीगण को दावे के एक भाग के साथ आगे बढ़ने या यहां तक कि दावे में शामिल वादकारण को अलग-अलग दावे के रूप में चलाने का चुनाव करने का निर्देश देने में सक्षम कर सकता है।

16. इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता कि न्यायालय के पास उपयुक्त मामलों में दावों को समेकित करने की शक्ति है। समेकन एक ऐसी

प्रक्रिया है जिसके द्वारा दो या दो से अधिक कारणों या मामलों को न्यायालय के आदेश द्वारा संयोजित या एकजुट किया जाता है और एक कारण या मामले के रूप में माना जाता है। इसलिए समेकन का मुख्य उद्देश्य लागत, समय और प्रयास को बचाना और कई कार्यों को एक कार्य मानकर उनके संचालन को अधिक सुविधाजनक बनाना है। समेकित करने का क्षेत्राधिकार तब उत्पन्न होता है जब न्यायालय में दो या दो से अधिक मामले या कारण लंबित होते हैं और न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों या सभी दावों में कानून या तथ्य का कुछ समान प्रश्न उठते हैं या दावों में एक ही संव्यवहार या संव्यवहारों की श्रृंखला के संबंध में या उससे उत्पन्न अधिकारों का अनुतोष चाहा गया है या किसी अन्य कारण से दावों को समेकित करने का आदेश देना वांछनीय है। (हैल्सबरी के इंग्लैंड के कानून, खंड 37, पैराग्राफ 69 देखें)। यदि न्यायालय में विभिन्न दावों को इस आधार पर समेकित करने की शक्ति है कि उन्हें समेकित करने के लिए आदेश देना वांछनीय होना चाहिए या इस आधार पर कि उनमें निस्तारण के लिए कानून या तथ्य के कुछ समान प्रश्न उठते हैं, तो यह निश्चित रूप से नहीं माना जा सकता है कि पक्षकारों व वादकारणों के कुसंयोजन के लिए दोषपूर्ण दावे का विचारण करना कानून द्वारा वर्जित है। न्यायालय में मान्यता प्राप्त समेकन की शक्ति स्पष्ट रूप से इस स्थिति को जन्म देती है कि केवल पक्षकारों व वादकारणों के कुसंयोजन की स्थिति ऐसी नहीं है जो दावे के संस्थान के लिए दहलीज पर ही बाधा उत्पन्न करती है।

17. यह माना जाता है कि न्यायालय के पास कार्यवाही के संचालन को नियंत्रित करने के लिए व्यापक विवेकाधीन शक्ति है जहां वादकारणों या पक्षकारों का एक संयोजन रहा है जो विचारण को शर्मिदा या विलंबित कर सकता है या उसमें असुविधा उत्पन्न कर सकता है। उस स्थिति में, न्यायालय या तो एक ही कार्यवाही में शामिल दो या दो से अधिक वादकारणों से संबंधित दावे के पृथक विचारण का आदेश दे सकता है या उस कुछ वादकारणों के कार्यों को सीमित करके और दूसरे को बाहर करके या वादी या वादीगण को यह आदेश दे सकता है कि वह यह चुने कि उन्हें किस वादकारण के साथ आगे बढ़ना है और किस वादी के साथ आगे बढ़ना है और किसके साथ नहीं या कोई ऐसा आदेश कर सकता है, जो समीचीन हो। (हेल्सवरीज़ लॉज ऑफ इंग्लैंड, खंड 37, पैराग्राफ 73 देखें)। निश्चित रूप से, जब मामला अदालत के विवेक पर निर्भर करता है, तो यह नहीं माना सकता है कि इस तरह के दोष से ग्रसित दावा कुछ ऐसा है जो कानून द्वारा वर्जित है आखिरकार, यह विचारण की सुविधा है जो प्रासंगिक है और जैसा कि प्रिवी काउंसिल ने पहले उल्लेखित निर्णय में देखा है, प्रतिवादी को यह तर्क देने का पूर्ण अधिकार भी नहीं हो सकता है कि इस तरह के दावे को आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए।

18. डिवीजन बेंच ने मुख्य रूप से मार्गो ट्रेडिंग और छह अन्य बनाम ओम क्रेडिट प्राइवेट लिमिटेड मामले में उसी उच्च न्यायालय के विद्वान

एकल न्यायाधीश के एक असूचित निर्णय पर भरोसा किया है, जिसकी एक प्रति हमारे अवलोकन के लिए उपलब्ध कराई गई थी। उस निर्णय को पढ़ने पर यह देखा गया है कि विद्वान न्यायाधीश ने अपने आदेश में आदेश । नियम 9 या पक्षकारों के संयोजन के पहलू पर इसके प्रभाव पर विचार नहीं किया है और उस आदेश में अन्य प्रावधानों के प्रभाव को भी उचित महत्व नहीं दिया है, न ही विद्वान न्यायाधीश ने आदेश ।। और विशेष रूप से उसके नियम 6 में नियमों के प्रभाव को उचित महत्व दिया है। हम पाते हैं कि पक्षकारों व वादकारणों के कुसंयोजन के पहलू पर उसी उच्च न्यायालय के बहुत सारे निर्णय हुए हैं। लेकिन यह कहना मुश्किल है कि इनमें किसी भी निर्णय में यह विचार किया गया है कि इस तरह के दोष को इंगित करने पर संहिता के आदेश VII नियम 11 (डी) के तहत एक वादपत्र खारिज किया जा सकता है। दूसरी ओर, हरेन्द्र नाथ बनाम पूर्ण चन्द्र ए.आई. आर. (1928) कलकत्ता 199 के मामले में डिवीजन बेंच ने पायने बनाम ब्रिटिश टाइम, रिकॉर्डर कंपनी लिमिटेड (1921) 2 के.बी. 1 से निम्नलिखित परिच्छेद उद्धृत किया:-

"मोटे तौर पर कहे तो, जहां अलग-अलग पक्षकारों द्वारा या उनके खिलाफ दावों में कानून या तथ्य का एक समान प्रश्न शामिल होता है या हो सकता है, जो बाकी कार्रवाई के अनुपात में पर्याप्त महत्व रखता है, जिससे यह वांछनीय हो

जाता है कि सभी मामलों का निस्तारण एक ही समय में किया जाना चाहिए, न्यायालय अपने विवेक के अधीन कि इसे किस प्रकार विचारित किया जाना चाहिए, वादी या प्रतिवादियों को शामिल करने की अनुमति देगा।"

और जारी रखा

"यह व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए एक अच्छा कार्यशील नियम है और इसे वर्तमान मामले में लागू करने पर, हमें यह स्पष्ट लगता है कि तय की गई कार्रवाई आदेश । नियम 1 व 3 सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा न्यायोचित है। हालांकि, मामले को देखते हुए, आदेश । नियम 2 के दृष्टिकोण से, हमारी राय है कि उस दावे का विचारण कुछ हद तक शर्मनाक होने की संभावना है, विशेष रूप से कुछ प्रश्न जो संपत्ति ए के संबंध में उठेंगे संपत्ति बी, सी, डी और ई के संबंध में दावे पर कोई असर नहीं पड़ेगा और इसलिए भी क्योंकि जहां तक देवता का संबंध है, लागत का सवाल उठेगा, जिसे यदि संभव हो तो, इनसे अलग रखा जाना चाहिए जो कि वादी अपनी निजी हैसियत से वसूली का हकदार होगा।

तदनुसार, हम निचले दोनों न्यायालयों द्वारा पारित आदेश को अपास्त करते हैं और निर्देश देते हैं कि वाद को दो दावों के रूप में माना जाए: एक वादी के अनुरोध पर संपत्ति ए के संबंध में देवता नंददुलाल ठाकुर के शेबेट के रूप में और दूसरा संपत्तियों बी. सी. डी और ई के संबंध में वादी की व्यक्तिगत क्षमता के रूप में और दोनों दावों की अलग से सुनवाई की जाएगी।

हमारे जैसी इसी तरह की स्थिति में उसी न्यायालय के एक विद्वान न्यायाधीश ने असेंबली ऑफ गॉड चर्च बनाम इवान कापर और अन्य (2004) 4 कलकत्ता उच्च न्यायालय नोट्स 360 में विधिक स्थिति पर विचार किया है। विद्वान न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि पक्षकारों और वादकारणों के कुसंयोजन का दोष एक ऐसा दोष है जिसे माफ किया जा सकता है और यह ऐसा नहीं है कि संहिता के आदेश VII नियम 11 (डी) के तहत वादपत्र को नामंजूर कर दिया जाए। जैसा कि हम देखते हैं, उक्त निर्णय सही कानूनी स्थिति को दर्शाता है। मार्गो ट्रेडिंग(उपरोक्त) में निर्णय सही कानून नहीं बताता है। मेयर (एच.के.) लिमिटेड और अन्य बनाम आर्नेर्स एण्ड पार्टीज, वेसल एम. वी. फॉर्च्यून एक्सप्रेस व अन्य. (2006) 3 एस. सी. सी. 100 में पारित इस न्यायालय के निर्णय भी इस पहलू को नहीं छूते हैं और एक वाद में आवश्यक तथ्यों को छिपाने के मामले से संबंधित है।

19. मौजूदा मामले में, हमें इस तथ्य पर भी विचार करना होगा कि प्रतिवादी द्वारा संबंधित अपीलार्थीगण के विरुद्ध संव्यवहार के आधार पर दायर वाद वर्तमान वाद, 2003 के सी. एस. नंबर 29 के साथ संयुक्त विचारण के लिये पहले से ही वापस ले लिये गये हैं। उन दोनों दावों में संबंधित अपीलकर्ताओं के प्रत्यर्थी के साथ हुए संव्यवहार की प्रकृति को विचारण के बाद निर्णीत करना है। वर्तमान दावे में अपीलार्थीगण उस भुगतान का दावा कर रहे हैं जो उनके दो मुकदमों में संबंधित अपीलकर्ताओं के खिलाफ प्रतिवादी के दावे का आधार भी बनता है। वर्तमान दावे,, 2003 के सी. एस. संख्या 29 में, अपीलकर्ताओं ने अपने संबंधित क्लेम को संयुक्त किया, जो प्रत्यर्थी द्वारा दायर किये गये दावे के प्रतिदावे या क्रॉस सूट की प्रकृति का है। सभी वादों के निर्णय के लिए एकमात्र प्रश्न प्रत्येक अपीलकर्ता के साथ प्रतिवादी द्वारा किए गए संव्यवहार की प्रकृति का है और दोनों दावों में जो साक्ष्य पेश की जानी है, वह प्रतिवादी की प्रत्येक अपीलार्थी के साथ किये गये संबंधित संव्यवहार की प्रकृति की है। यदि अपीलकर्ताओं द्वारा वर्तमान वाद में रखा गया वादकारण एक साथ विचारित किया जाता है, काफी हद तक साक्ष्य समान होगी। विशेष रूप से प्रतिवादी द्वारा दायर दो मुकदमों के संबंध में जो संयुक्त विचारण के लिए विद्धो किया गया , तो इसमें कोई शर्मिंदगी नहीं होगी। हस्तगत दावे पर एक साथ मुकदमा चलाया जाता है, खासकर प्रतिवादी द्वारा उनके खिलाफ दायर किए गए दो मुकदमों के संदर्भ में और संयुक्त

मुकदमे के लिए वापस ले लिया जाता है। इसलिए, मौजूदा मामले में, भले ही यह मान लिया जाए कि अपीलकर्ताओं द्वारा दायर वाद में वादकारणों के कुसंयोजन का दोष था, यह ऐसा मामला नहीं है जहां विचारण की सुविधा वादकारण को पृथक करके उनका पृथक से विचारण करने के लिए चेतावनी दे। तीनों मुकदमों की सुनवाई संयुक्त रूप से की जानी है और चूंकि किसी भी घटना में साक्ष्य सामान्य होंगे, इसलिए डिवीजन बेंच ने अपीलकर्ताओं को एक वादी और एक दावे के साथ आगे बढ़ने का निर्देश देने में गलती की। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर अपीलकर्ताओं को एक नया वाद दायर करने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए ताकि वह अपना दावा पेश कर सकें। यहां तक कि अगर ऐसा कोई वाद दायर किया भी जाता है, तो वर्तमान मुकदमे और प्रतिवादी द्वारा दायर दो मुकदमों के साथ उसकी संयुक्त सुनवाई का रास्ता साफ हो जाएगा। इसलिए, किसी भी स्थिति में, डिवीजन बेंच का विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले में हस्तक्षेप करना सही नहीं था। संयुक्त सुनवाई के लिए अपीलकर्ताओं के खिलाफ प्रतिवादी द्वारा दायर दो मुकदमों को वापस लेने के प्रभाव की डिवीजन बेंच द्वारा उचित सराहना नहीं की गई है। इसलिए, इस मामले के तथ्यों पर, डिवीजन बेंच का निर्णय अस्थिर और उसके द्वारा अपनाया गया रास्ता अनुचित पाया गया है।

20. हमारा दावे के तथ्यों और परिस्थितियों और तीनों दावों, जो वर्तमान में कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष है, अभिवचनों की प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए विचार है कि यह उचित और न्यायसंगत होगा कि उनका विचारण एक साथ किया जाए और उनका जिसके लिए एक आदेश किया जा चुका है, विधि के अनुसार निस्तारण किया जाए। हमारे विचार से साक्ष्य के आधार पर तीन मुकदमों की संयुक्त सुनवाई, इन परिस्थितियों में उचित कदम होगा।

21. इसलिए, हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और डिवीजन बेंच के फैसले को पलटते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले की पुष्टि करते हैं। हम उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश से अनुरोध करते हैं कि वे तीनों मुकदमों को विधि के अनुसार शीघ्रता से निस्तारण का प्रयास करें।

अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस टूल "सुवास" की सहायत से अनुवादक न्यायिक अधिकारी डॉ विमल व्यास आरजेएस द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के लिए सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।